शेखावाटी का ऐतिहासिक शक्ति पीठ जीण माताजी

शेखावाटी क्षेत्र पर दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक प्रतिहारों का राज्य था। इसके बाद यह क्षेत्र चौहानों के अधीन हो गया। उस समय (धंधदेव) धांधू चौहान राज्य करते थे। उन्होंने 959 में चूरू जिले में घांघू गांव बसाया जो आज भी वर्तमान है।

घांघु के दो रानियाँ थी एक के गर्भ से हर्ष और नीयर का जन्म हुआ और दूसरी के कान्ह, इन्द्र और चन्द्र तीन पुत्र पैदा हुए। घघरान (घांघू) की मृत्यु के बाद कान्ह गद्दी पर बैठा उसके चार पुत्र हुए अजरा, अमरा, सिद्धरा और वछरा। आगे चलकर अजरा से चाहिल, सिद्धरा से जोड़, वछरा से मोहिल अमरा से चौहान बने। इसी अमरा की आगे की पीढ़ी में वीर गूगाजी का जन्म हुआ ।

हर्ष और जीण शेखावाटी अंचल के विख्यात लोक देवता हुए। भाई–बहिन की अमर प्रेम गाथा है हर्ष और जीण का चरित्र भाई और बहिन के अनुठे रिश्ते को कड़ी नजर लगती है भौजाई की। यदि भाई की पत्नी दुर्भाग्य से कर्कशा हो तो बहिन के लिए भीषण संताप का कारण बन जाती है। उसका मुख्य हथियार होता है व्यंग्य–बाण, जो ननद को मर्मान्तक पीड़ा पहुंचाता है।

सभी स्त्रियाँ साधारणतया काफी सहनशील होती हैं, किन्तु स्वाभिमान पर बराबर चोट पड़ने पर वे कभी न कभी विखर जाती है। 'जीण' के साथ भी ऐसा ही हुआ। घांघू गांव का रहने वाला जीण का भाई ' हरषा' लम्बे समय के लिये परदेश गया हुआ था। इधर हरषा की पत्नी, अपने तीखे स्वभाव के कारण, ननद जीण को सुख से जीने नहीं दे रही थी। भावज ने ननद को अपने व्यंग्य बाणों एवं झूठे आरोपों से इतना तंग कर डाला कि जीण की सहनशक्ति ने जवाब दे दिया। वह तिलमिला उठी, किन्तु वह चरित्रवान एवं विवेकशील थी, अतः परिवार की मर्यादा को ध्यान में रखते हुए उसने आत्महत्या का रास्ता नहीं अपनाया। उसने किसी को कुछ नहीं कहा एवं चुपचाप घर से निकल पड़ी। उसने निश्चय कर लिया कि वह सांसारिक जीवन का मोह छोड़कर वैराग्य एवं सन्यास का रास्ता अपनाएगी।

संयोग से उसी समय हरषा परदेश से लौटकर घर आ गया था। बहन–भाई रास्ते में मिल गए। हरषा ने जीण से बाहर निकलने का कारण पूछा, तो जीण के धीरज का बांध टूट गया और ढुलकते आंसुओं के बीच उसने अपनी व्यथा–कथा कह सुनाई। हरषा ने जीण से पुनः घर लौट चलने का आग्रह किया और समझाया कि अब सब ठीक हो जाएगा, किन्तु जीण नहीं मानी। उसका सत् जाग उठा था। जीण का संकल्प इतना दृढ़ था कि उसका भाई भी विचलित हो गया और उसने भी तत्काल बहन के साथ संन्यास लेने का निश्चय कर डाला। दोनों गांव से बाहर निकल पड़े।

इस प्रसंग में जीण के भाई हरषा ने बहन का पक्ष लेकर, उस पर हुए अन्याय के प्रतिकार स्वरूप जो त्याग किया वह प्रशंसनीय है, किन्तु इन दोनों की कथा इसलिए अधिक स्मरणीय हो गई किं किसी सशक्त कवि ने इसे अपनी तरह से गाया और जग को सुनाया। जीणमाता के गीत को सुनकर कोई भी संवेदनशील प्राणी भाव विह्वल हुए बिना नहीं रह सकता। कथा–प्रसंग के गीत के कुछ मार्मिक अंश इस प्रकार हैं, जो राजस्थानी में हैं–

घर से निकल पड़ने पर जीण को हरषा सामने आता दिखाई पड़ता है, तब वह भाई को कहती है–

जे म्हारी होती जुग में माय
अखन कंवारी नै नांय बिडारती
कुण पूंछे नैणां हंदो नीर
कुण रे सैलावे जलतो हीवड़ो
कुण फेरै सिर पर म्हारै हाथ।

आज यदि मेरी माँ जीवित होती तो क्या मुझ अखण्ड कुंवारी कन्या को घर से जाने देती? अब न तो मेरे आँसू पौंछने वाला कोई है और न सुध लेने वाला।

जीण भाई को यह भी कहती है उसी ने बहन का कौन सा ध्यान रखा है? वह बहन को अपमान होता देखता रहा। बहन कोई जागीर तो मांगती नहीं थी। भाग्य जब बदलता है, तो जामण–जाया बीर भी आंख फेर लेता है। हरषा अपनी भूल स्वीकार करता है तथा बहन को पुनः घर लौट चलने का आग्रह करता है, किन्तु जीण नहीं मानती और कहती है–

थारी मनाई जीवण ना मनै
मनै तो मनासी रे राजा मान
और मनासी दिली रो बादस्या

इतना प्रबल आत्मविश्वास सहज ही पैदा नहीं होता।

जीण को अपने सत् और तप पर इतना भरोसा था।

भाई हरषा ने इन शब्दों में जीण को प्रलोभना देना चाहा–

टसी ए कली रो सिमाद्यूं घाघरो
अर, मंगवाय द्यू दिखणी चीर
मोत्यां जड़वाय द्यूं ए थारी राखड़ी
हीरां जड़ा द्यू थारो हार
बिछिया घड़ा द्यू ए बाई तन्ने बाजणा।

तुम्हारे लिए अस्सी कली का घाघरा सिलवा दूंगा एवं कीमती चीर मंगवा दूंगा। तुम्हारी रखड़ी मोतियों से जड़वा दूंगा एवं हार में हीरे जड़वा दूंगा, पैरों में सुन्दर बिछिया घड़वा कर दूंगा, तुम लौट चलो।

जीण के निश्चय को ये प्रभोभन डिगा नहीं सके। उसने कहा कि अब वह वापस मुड़ की नहीं सकती–

सिखर आयडो रे सूरज मुड़ चलै
समै बी गयोड़ो रै भंवरा मुड़ चलै
बादल री रे बूंदा पाछी मुड़ चलै
समदर सूं नदियां पाछी आय
जीण आयड़ी रे पाछी ना मुड़ै।

अनेक सुन्दर उदाहरण देकर जीण ने कहा कि असंभव भले ही संभव हो जाए, सूर्य बादल एवं समुद्र भले ही अपनी मर्यादा छोड़ दें, किन्तु जीण अपने निश्चय पर अटल रहेगी और कदापि पीछे नहीं मुड़ेगी।

हरषा ने विस्तारपूर्वक जीण की व्यथा–कथा सुनी और गहराई से अपनी बहन के दुःख का अनुभव किया। जीण ने कहा कि उसने बहुत सोच–समझकर गृह त्याग का निर्णय लिया है। उसने एक दिन तालाब के किनारे खड़े होकर, सूर्य को साक्षी में प्रण लिया था कि वह तपस्या के बल पर अपने को निर्दोष सिद्ध करेगी। भावज ने उसके निर्मल चरित्र को कलंकित करने की जो चेष्टा की है, वह उस दाग को धोकर रहेगी।

सोगन मैं खायी सरवर पाल पै
आडो तो लीनी रे सूरज देव
भावज रो चड़्यो कलंक उतारस्यूं।

हरषा ने प्रस्ताव रखा कि वह जीण के लिए गांव में मंदिर बनवा देगा, वह लौट चले। जीण ने कहा कि भाई का कोई दोष नहीं है, वह तो सहोदर है। पराए घर से आई नार (भावज) के कारण वह जा रही है। भाई के लिए उसने बड़े मार्मिक उद्‌गार प्रकट किए–

एकै ओदर में रे दोनूं लोटिया, एकै मायड़ रो चूंख्यो दूध।
एके पालणिये रे दोनूं झूलिया एकै बाटकिये पियो रे दूध।
बैनड़ भाई रो गाढ़ो नेहर परघर की आई रे तोड़ियो।

एक ही माँ के उदर में हम दोनों लोटे हैं, उसी का दूध पिया है। एक ही पालने में झूलते हुए बड़े हुए है। बहन– भाई में गाढ़ी प्रीत रही है, ये तो पराई नार के कारण बिछोह हो रहा है।

हरषा स्वयं व्याकुल हो जाता है एवं तत्काल निर्णय लेता है कि वह बहन का अनुसरण करते हुए गृह त्याग देगा जीण उसके निर्णय को अनुचित ठहराते हुए उसे घर लौट जाने को कहती है, किन्तु हरषा कहता है कि पहले वह चले। जीण तो अडिग रही। हरषा भी अपने कर्तव्य से न डिगा। उसे अतीत की कुछ बातें याद आई। मृत्यु शैया पर लेटी उसकी माँ ने कहा था कि उसे जीण की चिंता है। उसकी देखभाल कौन करेगा ? कौन उसका शीश गूंथेगी और कौन मेहंदी मांडेगी ? तब हरषा ने माँ को आश्वासन दिया था कि वह जीण को प्राणों से भी अधिक प्यार से रखेगा। माँ के अंतिम शब्द उसे याद आए–

हरखा म्हारा मोभीरे जे तूं राखैला पेटे पाप
ओदर रा रे लोटिया दरगा में दावणगिरिया हूं बणूं।

जीण और हरषा दोनों ही गाँव से निकल पड़े। दोनों ने अलग–अलग पर्वत शिखर पर तपस्या की। उनके तप से वह क्षेत्र आलोकित हो उठा। उनके सहज चमत्कारों से वशीभूत हो असंख्य नर–नारी उनके दर्शनों को उमड़ पड़े।

आज भी जीणमाता का मंदिर एवं हर्ष पर्वत पूजनीय स्थल माने जाते हैं तथा भाई–बहन के पुनीत प्रेम की गाथा सुनाते हैं।

हर्ष के शिलालेखों के पता चलता है कि रण पल्लीका गाँव वर्तमान में राणोली जिला सीकर के विरक्त ब्राह्मण अल्लट ने विक्रमी 1013 में हर्ष देव के मन्दिर का निर्माण किया और चौहान वंशी राजाओं से इसका स्थायी प्रबंध किया।

जीण माता के शिलालेख के अनुसार वि.सं. 1162 में सर्वप्रथम जीणमाता का मन्दिर बनने का पता चलता है।

हर्षनाथ

हर्षा ने बहिन को मनाने को अथक प्रयत्न किए किन्तु सफलता नहीं मिली। इस पर हर्षा ने भी यह ही दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह भी सन्यास ग्रहण कर तपस्या करेगा। जीवण बाई ने भाई को बहुत मनाया व समझाया कि वह घर पर रहे और प्रजा पर राज्य करे किन्तु हर्षा भी अटल रहा। अंत में दोनों भाई–बहिन घांघू से चलकर आधुनिक सीकर (राज.) के समीप अरावली पर्वत के उच्च शिखर पर जा पहुंचे। जीण बाई की सम्मति से हर्षा से नौ कि.मी. दूर दक्षिण में पर्वत के शिखर पर तपस्या करने बैठ गई। दोनों की घोर तपस्या से दोनों ही पूज्य हो गए। हर्षा ने भगवान शंकर तथा भैरव को अपनी तपस्या से प्रसन्न किया और अन्त में हर्षा को हर्षनाथ भैरव के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

यह पर्वत हर्षनाथ का पर्वत कहलाता है और आज तक हिन्दू समाज हर्षनाथ भैरु की पूजा करता चला आ रहा है।

माधवीदेवी सिगतिया, नागपुर

साभार– डमरु की आवाज सूनो ग्रन्थ स्मारिका 2004